'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक २८ | वाराणसी, शनिवार, ७ मार्च, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

साहित्यिकों से

सर्वोदयनगर (अजमेर) २८-२-'५९

दुनिया की तीन तारक शक्तियाँ

गत सात-आठ वर्षों से साहित्यिकों के सामने बोलने का रिवाज ही पड़ गया है। मुझे भी बहुत खुशी होती है, जब मैं अपने को उनके बीच पाता हूँ। सिर झुकाने के जितने अधिक स्थान मिलते हैं, मनुष्य का विकास उतना ही शीघ्र होता है। जिसे सारी सृष्टि के कण-कण में आत्म-दर्शन, परमात्मा की विभूति का दर्शन होता है, उसके लिए तो सर्वत्र ही सिर झुकाने की सहूलियत हो जाती है। ऐसे जितने स्थान उपलब्ध हों, उतना ही मनुष्य के लिए अच्छा है। मेरे लिए साहित्यिकों का एक ऐसा स्थान है, जहाँ स्वभाव से ही मैं नम्र हो जाता हूँ। वैसे अपने में मैं इतना नम्र नहीं, जितना कि विशेष स्थानों में नम्र बन जाता हूँ।

साहित्यिकों का श्रोता भी दुर्लभ

मैं साहित्यिक तो नहीं, लेकिन एक दृष्टि से देखा जाय तो साहित्यिकों की प्रेरणा अवश्य हूँ। इस अर्थ में कि साहित्यिकों को प्रेरणा तब मिलती है, जब कि उनकी बात प्रेम से सुननेवाले मिल जाते हैं। साहित्यिक कोई ज्यादा माँग करते ही नहीं। यही तो उनकी खूबी है। दूसरे-तीसरे लोग दुनिया से माँग किया करते हैं, लेकिन साहित्यिक तो इतना ही कहते हैं कि 'मेरी बात सुनभर लो, फिर छोड़ देना हो तो छोड़ दो या उसमें से कुछ लेना हो तो ले लो; यह तुम्हारी मर्जी पर है'। इतने कम में संतोष माननेवाला शायद ही कोई दूसरा हो। हाँ, तो मुझसे उन लोगों को प्रेरणा तब मिलती है, जब श्रोता मिल जाता है। साहित्यिकों का श्रोता भी जरा दुर्लभ ही होता है। जो व्यक्ति ऐसे विचारों का भी मर्म समझकर रसग्रहण करे, जो अपने विचारों से सर्वथा भिन्न या विरुद्ध हों और जिन्हें माना भी न जा सके, वही साहित्यिकों का श्रोता बन सकता है। साहित्यिक की खूबी यह है कि एक साहित्यिक का दूसरे साहित्यिक से मेल नहीं बैठता! उसकी यह भी खूबी है कि वह प्रतिक्षण बदलता रहेगा। विसंगति उसके जीवन में रह ही नहीं सकती, क्योंकि नित्य बदलते रहना ही उसका जीवन होता है। उसे वह संगति ही समझता है। फिर भी अन्दर वह एक एकता महसूस करता है। अतएव ऐसे अनेक साहित्यिकों के पास पहुँचकर सबका रसग्रहण करनेवाले, उनकी इज्जत करनेवाले और उनके विचारों से कुछ-न-कुछ ग्रहण करनेवाले श्रोता दुर्लभ ही होते हैं। ऐसे दुर्लभ श्रोताओं में से मैं एक हूँ। इसीलिए उनके सामने मेरा सिर झुक जाता है।

साहित्य और साहित्यिक की मर्यादा

ऋग्वेद में यह वचन आया है कि ब्रह्म जितना व्यापक है, उतनी व्यापक वाणी भी है। यहाँ 'वाणी' शब्द का अर्थ केवल वह स्थूल वाणी नहीं, जिसे हम बोलते हैं, बल्कि एक ब्रह्म-शक्ति है, जिसके आधार पर मनुष्य चिन्तन करता है, जिसे 'चिन्तन-प्रकाशन' कहते हैं। चिन्तन को समझना भी पड़ता है। चिन्तन करना उसे प्रकाशित करना और उसे समझना—ये तीनों वाणी द्वारा होते हैं। मन चिन्तन करता है, वाणी बोलती है और कान सुनते हैं। मन, वाणी और कान के ये भेद तो स्थूल ही हैं, किन्तु यहाँ तो 'वाग्' शब्द का ही प्रयोग किया गया है। उसमें मन, वाणी और कान तीनों आ जाते हैं। वह वाक्-शक्ति साहित्य है। साहित्य से ब्रह्म-चिन्तन और फिर ब्रह्म-प्रकाशन कर सकते हैं। उसके बिना ब्रह्म अप्रकाशित ही रह जायगा। इसीलिए साहित्यिक का ध्यान स्वाभाविक ही सृष्टि की सभी बातों की ओर जाता है। वह भला-बुरा, गुप्त-प्रकट, वर्तमान और भविष्य सभी चीजों का ध्यान रखता है। तब जो काम मैंने सात-आठ सालों से उठाया है, उस तरफ भी इनका ध्यान होना ही चाहिए। अतः उनसे यह कहना कि 'आइये, हमें सहायता कीजिये, हमारे काम की ओर ध्यान दीजिये', अज्ञान है। वे इन बातों पर ध्यान नहीं देते, बल्कि बातें ही उनके ध्यान में आ जाती हैं। इसलिए हम यह महसूस नहीं करते कि वे ध्यान नहीं दे रहे हैं। मुझे अनुभव भी ऐसा ही आया है। जब कभी साहित्यिकों से बात करने का मुझे मौका मिला, यही पाया कि उनके दिल में पर्याप्त सहानुभूति है। हर प्रान्त और हर भाषाओं में जो मंगल, सत्य और शिव है, उस तरफ साहित्यिकों की स्वाभाविक ही सहानुभूति होती है। भूदान, ग्रामदान, मालकियत छोड़ने की बात, शरीर-परिश्रम का महत्त्व, विश्व-मानुष का निर्माण; ये सारी बातें ऐसी हैं, जिनका स्थूल अर्थ करने पर दोष ही पैदा होंगे। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से उनकी ओर देखें तो वह एक बहुत ही मंगल और शुभ विचार दीख पड़ेगा।

नग्नता से विशेष प्रेम

इस तरह से जब साहित्यिकों की इस पर स्वाभाविक सहानुभूति है तो उनके पास पहुँचने पर हम अपने को निर्भय पाते हैं। इतने वर्षों के अभ्यास से मैं दिगंबर बन गया हूँ, याने जैसा हूँ, वैसा ही दुनिया के सामने खड़ा हो जाता हूँ। साहित्यिकों को वह मनुष्य अत्यन्त प्रिय होता है, जो चाहे कितना ही गिरा हुआ हो, पर नग्न हो। उन पर साहित्यिकों का बहुत प्यार होता है। इन दिनों मैं बिलकुल ही नग्न हो गया हूँ। वाणी और बर्ताव में संयम नहीं रखता। वैसे बहुत ज्यादा जानता भी नहीं कि संयम कैसे रखा जाय, लेकिन थोड़ा अवश्य जानता हूँ। फिर भी उसका पालन नहीं करता और जो शब्द सूझता है, वह बोलता हूँ। जो सुझाव सहज ही करने जैसा मालूम होता है, उसे कह देता हूँ। किसी संस्था में मैंने अपना स्थान नहीं रखा है। इसीलिए चित्त को कोई खास बाह्य उपाधि भी नहीं रही। साहित्यिकों को नग्नता प्रिय होती है। वह नग्नता की प्राप्ति मुझे हो गयी है। इसीलिए आपकी टोली में मैं अपने को निर्भय ही पाता हूँ।

आज विश्वास-शक्ति का महत्त्व

कल शाम का व्याख्यान तो आपने सुना ही है, जिसमें मैंने कहा था कि 'इसके आगे हमारे लिए किसी प्रकार संकुचित बनना या बने रहना सुखकर नहीं होगा।' आज विज्ञान की शक्ति मदद में आ गयी है और आत्म-ज्ञान की तो अपने देश में पहले से थी ही। आत्म-ज्ञान हमें व्यापकता तो सिखाता ही था, किन्तु अब विज्ञान उसकी भौतिक आवश्यकता भी बताता है। इस युग में अगर हम व्यापक नहीं बनेंगे, तो हमारा भौतिक जीवन असंभव हो जायगा। ऐसी परिस्थिति विज्ञान उपस्थित करता है। कारण आत्म-ज्ञान और विज्ञान एक हो गये हैं। तीसरी भी एक शक्ति है और मुझे इन तीनों शक्तियों का दर्शन हो गया है। उस तीसरी शक्ति को मैं 'विश्वास-शक्ति' कहता हूँ। विज्ञान-युग में राजनीति, सामाजिक योजनाओं और समाज-शास्त्र में इसकी बहुत जरूरत है। हममें जितनी विश्वास-शक्ति होगी, उतने ही हम इस युग के अनुरूप बनेंगे। किन्तु इन दिनों बहुत ही अविश्वास दीखता है। खासकर राजनैतिक, धार्मिक और पांथिक क्षेत्र में यह पुराना चला आ रहा है, फिर भी वह टिकनेवाला नहीं है। अगर हम टिकाना चाहें तो भी वह न टिकेगा। राजनीति में अविश्वास को एक बल माना जाता है। उसे सावधानता का लक्षण माना जाता है। लेकिन मैं मानता हूँ कि जिस क्षण मन में यत्किंचित् भी अविश्वास पैदा हो, वह क्षण हमारे लिए असावधानता का है। पूर्ण विश्वास के बिना राजनीति नहीं सुधरेगी। राष्ट्रों में झगड़े बढ़ेंगे, पांथिक झगड़े भी बढ़ेंगे और विज्ञान युग में उसका परिणाम बहुत खतरनाक होगा। इसीलिए वेदान्त और विज्ञान के साथ मैंने विश्वास को भी जोड़ दिया है। मैं आजकल उन्हीं तीनों तत्त्वों की उपासना करता हूँ। इन दिनों मैंने संस्कृत में एक श्लोक बनाया है, जो मेरा जप का मन्त्र बन गया है। वह सारे भारत में चले, इसलिए मैंने उसे संस्कृत में बनाया है, जो इस प्रकार है :

'वेदान्तो विज्ञानं विश्वासश्चेति शक्तयस्तिस्रः।
येषां स्थैर्ये नित्यं शान्तिसमृद्धी भविष्यतो जगति॥'

याने वेदान्त, विज्ञान और विश्वास ये तीन शक्तियाँ हैं, इन तीनों के स्थैर्य से दुनिया में शान्ति, समृद्धि होगी। आज दुनिया को शान्ति और समृद्धि की जरूरत है। वह वेदान्त, विज्ञान और विश्वास से ही हो सकेगी।

वेदान्त और विज्ञान का अर्थ

वेदान्त याने वेद का अन्त, वेद का खात्मा। वेद याने सब प्रकार के काल्पनिक धर्म। दुनिया में जितने 'कन्वेन्शनल' धर्म हैं, उन सबका अन्त ही वेदान्त है। इसलिए उसमें इस्लामांत, जैनान्त, बौद्धान्त, सिखान्त, ख्रिस्तान्त इन सबका अन्त आ जाता है। सत्य की खोज, सत्य की पहचान और सत्य को मानना ही वेदान्त है। विज्ञान याने सृष्टितत्त्व की खोज, अगर हमारा शारीरिक जीवन उसके अनुकूल बने तो सम्पूर्ण स्वास्थ्य की उपलब्धि होगी। आगामी युग का चित्र मैं अपने मन में यही रखता हूँ कि उस युग में हर बीमारी के लिए उपाय उपलब्ध होंगे, लेकिन मनुष्य को कोई भी बीमारी ही न होगी। उपाय उपलब्ध होने पर भी उनके उपयोग का अवसर ही उपलब्ध न होगा। आँखों के लिए उत्तम-से-उत्तम चश्मा उपलब्ध रहेगा, पर आँखों को उसकी किसी प्रकार की जरूरत ही नहीं रहेगी। हर गाँव में डाक्टर हो, ऐसा एक आदर्श इन दिनों माना जाता है। लेकिन आगे की दुनिया में डाक्टर का नाम ही नहीं रहेगा, सभी तन्दुरुस्त रहेंगे। बीमारियों के कारणों का निर्मूलन नहीं होता, इसीलिए उपायों के उपयोग करने का मौका मिलता है। जब तक यह नहीं होता, तब तक सृष्टि-विज्ञान-तत्त्व का चिन्तन कर उसके अनुसार हम अपना जीवन नहीं बना सकेंगे। इसलिए विज्ञान और परस्पर विश्वास होना चाहिए।

अपने परीक्षित सुझाव दें

इस तरह राजनैतिक, सामाजिक या कौटुम्बिक कोई भी हो, ये तीनों शक्तियाँ दुनिया के लिए तारक होंगी, ऐसा हमने माना है और यही बात हम आपके सामने भी रखते हैं। इसमें यदि आपको कोई शुद्धि या वृद्धि करनी हो तो आप कर ही सकते हैं। सौभाग्य से मुझे हिन्दुस्तान की सब भाषाओं के सर्वोत्तम साहित्य से परिचय करने का मौका मिला है और नित्य कुछ-न-कुछ अध्ययन करता ही रहता हूँ। बीच में एक जापानी भाई आये थे। वे दो महीना रहे। उतने में उन्होंने मुझे जापानी भाषा सिखा दी। एक जर्मन-बहन साथ में थी, उसने मुझे जर्मन भाषा सिखायी। इस तरह मैं सीखता ही रहता हूँ, क्योंकि मैं स्वभावतः विद्यार्थी ही हूँ। अतएव मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि हम जो कर रहे हैं, उस तरफ आपका ध्यान तो है ही, किन्तु उसका परीक्षण भी कीजिये और उसी दृष्टि से हमारे सामने अपना निचोड़ रखिये। उससे हमें बहुत मदद मिलेगी। हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का जो भेद है और हिन्दुस्तान के अन्दर भी जो अनेक प्रकार के भेद हैं, वे सब न रहें, बल्कि एक पूर्ण वस्तु बने। विविध अंगमात्र बने रहें, भेदरूप न बनें इसी दृष्टि से हम कुछ काम करना चाहते हैं।

पंजाब-कश्मीर यात्रा का लक्ष्य

अब हमें पंजाब और कश्मीर जाना है। भूदान, ग्रामदान आदि का विचार वैसे पहले से ही संकुचित नहीं, एक विशिष्ट विचार ही था। किन्तु अब वह विशिष्ट से आगे बढ़कर व्यापक बन गया है। इसलिए पंजाब और कश्मीर में हम यह सोचकर जा रहे हैं कि वहाँके लोगों के साथ जितना एकमत हो सके, उतना होने की कोशिश करें और सारी दुनिया में विचित्रता से भरी एकता का दर्शन हो। लेकिन उसके लिए साधनरूप भारत और पाकिस्तान बने। आज पाकिस्तान हर साल सेना के पीछे कम-से-कम सौ करोड़ रुपये खर्च करता है तो हिन्दुस्तान तीन सौ करोड़। एक साल

में कुल चार सौ करोड़ रुपया सेना पर खर्च करना यह बहुत ज्यादा है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान इन दोनों का खर्च मिलकर हमारा ही खर्च है। हमारा दाहिना और बायाँ हाथ, दोनों शस्त्रसज्ज हैं, यह बात हमें बहुत दुःख देती है। यह ठीक है कि ये भिन्न-भिन्न राष्ट्र बने हैं और अपने अपने ढंग का जीवन बिताते हैं। किन्तु जैसे एक ही राष्ट्र में एक प्रान्त में से दूसरे प्रान्त में जाने के लिए कोई 'वीसा' या 'पासपोर्ट' की जरूरत नहीं रहती, वैसे ही किसी भी देश में हम बिना पासपोर्ट जा सकें, ऐसा होना चाहिए। हम कुल विश्व के नागरिक बनें। यही चाह लेकर हम पंजाब और कश्मीर जाना चाहते हैं। आपके आशीर्वाद हमें मुहैया हों तो यह काम हमसे बन सकता है; अन्यथा हमारा तो प्रयत्न होगा ही। उसकी फलश्रुति परमेश्वर को समर्पण कर हम काम करते रहेंगे। हमारी इस इच्छा का कुछ रूप बने, इसलिए आपके आशीर्वाद की हमने अपेक्षा रखी है। ●●●

प्रार्थना-प्रवचन

महेसाणा २६-१२-'५८

लोभ का ग्रामीकरण कीजिये

आज देश में जहाँ जाइये, वहीं अव्यवस्था दीख पड़ेगी। जहाँ-तहाँ आपको भरपूर प्रेम, लोभ और अव्यवस्था दीख पड़ेगी। अवश्य ही यहाँ प्रेम-गुण है, पर उसे दबा देनेवाला लोभ और अव्यवस्था भी पिंड नहीं छोड़ती। यों तो यह बात सारी दुनिया पर लागू है। हमारे शास्त्रकारों ने तीन गुणों का वर्णन किया है। सत्त्वगुण का लक्षण प्रेम है, रजोगुण का लोभ और तमोगुण का अव्यवस्था। ये तीनों सृष्टि की उत्पत्ति की मूल प्रक्रिया में ही पड़े हैं। अतः वे प्रकृति-विकार हैं और इसलिए सारी दुनिया में दीख पड़ते हैं, फिर भी हमारे देश में वे उत्कट रूप में देखे जाते हैं। यदि हम इन अन्तिम दो बातों को निकाल दें तो बढ़नेवाला यह प्रेम निखर उठेगा। आज इस लोभ और अव्यवस्था के कारण ही प्रेम की शक्ति दब-सी गयी है। हमने प्रेम को घर में ही कैद कर रखा है। जिस तरह रुके पानी में कीड़े पड़कर वह सड़ जाता है, उसी तरह प्रेम की भी स्थिति है, अतः उसे बाहर प्रवाहित करना चाहिए। उसके लिए सुनियोजित योजना करनी चाहिए। आज हमारे देश में एक पंचवर्षीय योजना पूरी हो चुकी, दूसरी भी समाप्त-प्राय है और तीसरी के भी मसविदे बन रहे हैं, चर्चाएँ चल रही हैं। लेकिन प्रेम का यह प्रवाह अखण्ड बहाने की योजना नहीं की जाती तो इन पंचवर्षीय योजनाओं से कुछ न होगा। दोष और अव्यवस्थाएँ वैसी ही रहेंगी और लोग रीते ही रह जायँगे। इन सभी योजनाओं के बाद कदाचित् यही अनुभव हो कि लोकशक्ति क्षीण हो गयी है।

प्रेम की योजना सरकार के वश की नहीं

प्रश्न होगा कि प्रेम का यह प्रवाह कौन चलायेगा? क्या सरकार चला सकेगी, कानून चला सकेगा? नहीं, लोभ और अव्यवस्था को मिटाकर प्रेम का प्रवाह जारी करने की योजना सरकार या कानून के बूते के बाहर की बात है। सरकारी योजना से देश का उत्पादन और दौलत बढ़ सकती है, रास्ते साफ-सुथरे बन सकते हैं, शिक्षा भी बढ़ सकती है। यों बाहरी सुधार हो सकता है, लेकिन अन्दरूनी सुधार स्वयं जनता ही कर सकती है। प्रजा के अन्दर का खमीर जागृत करने की प्रेरणा देनेवाले प्रजा के बीच से ही पैदा होंगे और उनके मार्गदर्शन से जीवन सुधारा जाय, तभी वह सुधर सकता है। इसलिए जीवन-शुद्धि की योजना होनी चाहिए।

विभिन्न दल की सत्ता दलदल में

सरकारी योजना की खामियाँ विभिन्न दल बतलाया करते हैं और फिर सुधार करनेवाले तदनुसार सुधार भी कर देते हैं। लेकिन उतने से अन्तःशुद्धि नहीं हो पाती। अन्तःशुद्धि की यह योजना ये दल कर सकते हैं, यह नहीं कहा जा सकता। कारण। स्वराज्यप्राप्ति के बाद आज देश में एक बहुत बड़ा अज्ञान, गलतफहमी यह फैल गयी है कि सत्ता के द्वारा ही कोई भी सेवा हो सकती है। इसलिए सभी दल सत्ता हथियाने के लिए ही जुटे हैं। एक सत्ताधारी पक्ष बना है तो दूसरे सत्ताभिलाषी। इस तरह सभी सत्ता के पीछे ही पड़े हुए हैं। कांग्रेसवाले भी लोगों के बीच पहुँचकर उनके दुःख सुनते और उन्हें सरकार तक पहुँचाकर जहाँ तक बनता है, राहत पहुँचाने का यत्न करते हैं। ये उभयान्वयी अव्यय जैसे हैं। किन्तु उनका भी ध्यान इस ओर नहीं जाता कि जनता के बीच स्वतन्त्र कार्य खड़ा किया जाय। विरोधी दल आ-जाकर सत्ताभिलाषी होते ही हैं। अतएव जनता के बीच सरकार की खामियाँ रखने, उनकी निन्दा करने और आगामी चुनावों में अपने को चुनने की सलाह देने के सिवा उनका कुछ काम ही नहीं रहता। फलस्वरूप लोक-मानस क्षुब्ध हो उठता है। उसमें तनिक भी श्रद्धा नहीं रह पाती। उसमें थोड़ी-सी भी स्थिरता और निष्ठा नहीं पायी जाती। परिणामस्वरूप आज हममें पहले से अधिक निष्क्रियता दीखने लगी है। इसे मिटाने के लिए जनता के बीच आत्मशुद्धि का, अन्तः-शुद्धि का आन्दोलन चलना चाहिए।

हम जितना ही हृदय शुद्ध करेंगे, उतनी ही हमारी शक्ति बढ़ेगी। यदि हम इसे छोड़ ऊपर-ऊपर दौलत और उत्पादन बढ़ाने का यत्न करेंगे तो उससे आत्म-शुद्धि कभी भी न होगी। कहा जाता है कि वार्षिक उत्पादन २७५ का २८० हो गया है, लेकिन क्या उससे जनता का कुछ उत्थान हुआ? उसका उत्थान तो तभी होगा, जब वह धैर्यवान, गुणवान और निष्ठावान बने। उसमें आत्म-विश्वास आये। यह न मालूम पड़े कि सारा काम सरकार ही कर सकती है। स्वराज्य पाने का तभी कुछ अर्थ माना जा सकता है। नहीं तो आज स्वराज्य के नाम पर जैसी स्थिति है, उसकी अपेक्षा पारतन्त्र्य ही रहे तो खुलकर उसका विरोध भी किया जा सकता है। आज सभी चाहते हैं कि हमारी संपत्ति बढ़े। हर कोई अपने-अपने लाभ की ही सोचता है। फलस्वरूप एक ओर से लोभ बढ़ता है तो दूसरी ओर से अव्यवस्था मचती है। कारण रजोगुण की प्रतिक्रिया तमोगुण में होना स्वाभाविक ही है। फिर गाँव और शहरों में समाज की रक्षा नहीं हो पाती तो आश्चर्य ही क्या?

क्या यह ज्ञान की वासना है?

हर गाँववाले चाहते हैं कि हमारे यहाँ स्कूल खुले। आखिर क्यों? इसीलिए कि वहाँ हमारे लड़के जाकर शिक्षित बनें और उन्हें हम जैसा खेत पर कठोर श्रम न करना पड़े। बैलों और बन्दरों के साथ रहकर बैल और बन्दर ही न बन जाना पड़े। किन्तु सोचने की बात है कि वास्तव में यह ज्ञान की वासना है या श्रम टालने की? रावण सीता का हरण करने के लिए राक्षस रूप में नहीं आ सका। ब्राह्मण का वेष लेकर आने पर ही वह

सीता का हरण कर पाया। भले ही उसने ब्राह्मण का वेष लिया हो, पर था राक्षस ही। इसी तरह यह तमोगुण और आलस ज्ञान और जिज्ञासा का रूप धारण कर खड़े हो जाते हैं। यह कोई ज्ञान की जिज्ञासा नहीं कही जा सकती। बिना काम किये जीवन अच्छी तरह चला जा सके, इसीकी यह वासना है। नेताओं को इसपर विचार करना चाहिए। लेकिन वे लोग तो सरकार में ही फँसे हुए हैं। उन्हें इतनी फुर्सत ही कहाँ? फिर यह काम कौन करे?

प्रजा से ही सेवक खड़े हों

इसके लिए आप लोगों में से ही सेवक खड़े हों और वे ही आत्म-शुद्धि का यह आन्दोलन चलायें। अगर हिम्मत के साथ उनकी सेना खड़ी हो जाय तो यह काम हो सकता है। वे लोगों को यह सिखा सकते हैं कि गाँव-गाँव में कैसी व्यवस्था रखी जाय। अपनी सम्पत्ति बढ़ाने के बदले गाँव की सम्पत्ति बढ़ायी जाय। इस तरह व्यक्तिगत लोभ को सामाजिक स्वरूप दिया जायगा तो उसका निरसन, रूपान्तरण किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति निश्चय करे कि अकेला मेरा घर ही नहीं, सारा गाँव सुखी रहेगा। इस तरह लोभ का सामाजीकरण, ग्रामीकरण किया जायगा तो दोष मिट-कर वह गुणरूप में प्रकट हो जायगा। व्यक्तिगत उन्नति की आकांक्षा के बदले सभीमें ग्राम उन्नति की आकांक्षा पैदा हो जायगी, जिससे अपनी-अपनी देखने के कारण होनेवाली अव्य-वस्था पैदा न होगी। रेल के टिकट के लिए क्यू लगाने पर आसानी से सबको टिकट मिल जाता है और अव्यवस्था नहीं हो पाती। इसी तरह हर कोई सबकी चिन्ता करे तो स्वाभाविक रूप में व्यवस्था का गुण आ जाता है। अतः हम इन दोनों दोषों, लोभ और अव्यवस्था को मिटाने के लिए लोगों को ग्रामधर्म समझायें, अपनी शक्ति ग्राम को समर्पण करें और देश के स्वराज्य के बाद ग्रामों में भी स्वराज्य की स्थापना कर दें। ध्यान रहे कि यदि हम लोभ का ग्रामीकरण कर दें तो वह सभी की आकांक्षा रूपमें प्रकट होगा और आज व्यक्तिगत लोभ के कारण जो अव्यवस्था खड़ी है, उसके बदले व्यवस्था खड़ी हो जायगी। यही काम लेकर मैं गत ७।८ वर्षों से यात्रा कर रहा हूँ। आप लोगों को समझना चाहिए कि देश के उत्थान के लिए इसके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिए हर कोई अपनी-अपनी चिन्ता छोड़ समाज और गाँव की चिन्ता करे।

हमारे दो कार्यक्रम

इसके लिए मैंने दो कार्यक्रम रखे हैं: एक तो सम्पत्ति समाज की कर दी जाय। अपने पास जो हो, समाज को अर्पण कर दिया जाय। दूसरी बात, 'श्रीकृष्णः शरणं मम' यह मन्त्र हम कहते हैं तो श्रीकृष्ण की तरह सब एकत्र होकर गाँव का गोकुल बनायें। सब मिलकर जो मिले, बाँटकर खायें। सुख और दुःख दोनों बाँट लें। यदि हम ऐसा करते हैं तो हम श्रीकृष्ण-चरित्र ठीक समझ सकते हैं। इसीका नाम 'ग्रामदान' है।

●———●

प्रार्थना-प्रवचन — कावा (साबरकाँठा) ७-१-'५९

लोकशक्ति जागृत करने का एकमात्र उपाय : सर्वोदय-पात्र

आपने देख ही लिया कि आज प्रार्थना में सबके शान्त हो जाने से हम लोगों के चित्त पर कितना सुन्दर परिणाम हुआ। जब सारे समूह की शक्ति किसी अच्छे काम में एकत्र हो जाती है तो मानव का मन छोटा नहीं रह जाता, बड़ा बन जाता है। बीस-पचीस बच्चों के साथ खेलने लग जाने पर मानव खुद को भूल जाता है और उन्हें भी बड़ा आनन्द आता है। अकेले कसरत करना कठिन लगता है, लेकिन जब सभी मिलकर उसे करते हैं तो आनन्द मिलता है। इस तरह स्पष्ट है कि सभी मिलकर काम करें तो उससे शक्ति पैदा होती है। बहुत बड़ा काम कुछ लोग मिलकर करें, इसकी अपेक्षा छोटा काम सब मिलकर करें तो उससे बहुत बड़ी शक्ति पैदा हो सकती है।

राष्ट्रीय शक्ति बढ़ाने का उपाय

आम तौर पर यह माना जाता है कि अच्छे काम महात्मा लोग ही करते हैं। इसके लिए उनका यश गाया जाता है। लोग उनका आदर-सम्मान करते, उनके वश भी होते और कहा करते हैं कि 'भाई! यह काम हम लोग तो कर नहीं सकते'। लेकिन केवल महात्मा लोग बड़ा काम करें तो उससे देश की शक्ति बढ़ नहीं सकती। सभी मिलकर कोई छोटा-सा भी काम करें तो देश की शक्ति बढ़ सकती है। इसलिए मैं बहनों के लिए बहुत ही छोटा और बड़ा ही सरस काम बताता हूँ कि वे अपने घरों में सर्वोदय-पात्र रखें और उसमें रोज मुट्ठीभर चावल इस भावना से डाला करें कि हमें इसके आधार पर सारे समाज की सेवा करनेवाले सेवक मिलें।

आप जानते ही हैं कि कांग्रेस ने गांधीजी के जमाने में बहुत काम किया है। कितने ही लोग जेल में गये। उस काम में गरीब और श्रीमान सभीने मदद दी। लेकिन स्वराज्य के बाद तो हम यही समझने लग गये हैं कि जो कुछ करना होगा, सरकार ही करेगी। हम भी कुछ कर सकते हैं, यह विश्वास लोगों में नहीं रहा। किन्तु हर नागरिक में ऐसा विश्वास पैदा होना चाहिए। हम अपने गाँव की सफाई कर सकते हैं, न्याय कर सकते हैं। गाँव का कोई भी झगड़ा गाँव से बाहर जाने से रोक सकते हैं। शिक्षा का काम भी कर सकते हैं। इस तरह बहुत-से काम हम कर सकते हैं, ऐसी श्रद्धा और ऐसा विश्वास हममें आना चाहिए। लोगों को यह समझना चाहिए कि हमारा भी कोई समाज-धर्म और ग्राम-धर्म है।

आज साबरकाँठा में पाँच-छह काम करनेवाले हैं। इतने से काम न चलेगा। कम-से-कम १२५-१५० सेवक तो होने ही चाहिए। तभी सबकी समान सेवा हो सकेगी और लोगों को ज्ञान प्राप्त होगा। आज तो गाँवों में ज्ञान ही नहीं है। वे रात-दिन काम करते हैं, फिर भी उन्हें ज्ञान नहीं है। उनके पास यह ज्ञान पहुँचाने के लिए कौन जायगा? इसलिए सेवक चाहिए। इतने कम लोग यह काम कैसे कर सकते हैं?

जैसी करनी, वैसी भरनी

यह सच है कि ईश्वर की इच्छा से ही सभी काम हुआ करते हैं और यह काम भी ईश्वर चाहता ही है। किन्तु हमें भी अच्छा काम करना होगा। हम जैसे भला-बुरा करते हैं, ईश्वर भी तटस्थ होकर उसका वैसा ही फल देता है। हम बबूल के फूल बोयेंगे तो आम कहाँसे मिलेगा? अतः कर्म करने की जिम्मेदारी उसने हमपर डाली है तो उसे हमें निभाना ही चाहिए।

गाँवों की वर्तमान अवस्था तभी सुधर सकती है, जब गाँव-गाँव के लिए सेवक होंगे। ये ही सेवक गाँव-गाँव घूम-घूमकर शिक्षा देंगे। इन सेवकों के पीछे बहनों का आशीर्वाद होना चाहिए—हम आप लोगों को सहयोग देंगे, ऐसा वचन देना चाहिए। याने वे एक सर्वोदय-पात्र का ही काम करें तो यह सेवक वर्ग खड़ा हो सकता है। हम ऐसी योजना चाहते हैं कि गाँव-गाँव जनता की सेवा करनेवाले निरन्तर सेवक रहें। अतः बहनें और भाई घर-घर जाकर समझायें और घर-घर सर्वोदय-पात्र रखवायें तो फिर आगे का काम सुलभ हो जायगा। काम करनेवाला कर्ता हो जाय तो करण जुट ही जायँगे। याने पहले काम करनेवाले खड़े हो जायँ तो फिर शिक्षण आदि की व्यवस्था भी हो जायगी। अब तक सरकार जो करे, उसीपर हम निर्भर रहते आये हैं। जनता स्वयं कुछ भी नहीं करती, इसीलिए मैं यह आपसे कह रहा हूँ।

प्रार्थना-प्रवचन

अहमदाबाद २०-१२-'५८

सर्वोदय ही विज्ञान को पचा सकता है

आपकी इस नगरी से मैं बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाये हुए हूँ। इस नगरी के साथ मेरा परिचय बहुत पुराना है। ४२ साल पहले की एक कहानी आपको सुनाऊँगा, जिससे आपको पता चलेगा कि इस राजधानी से मेरा किस तरह परिचय हुआ।

प्रथम दीक्षा की कहानी

सन् १९१६ की बात है। मैं बड़ोदा के कालेज में इण्टर में पढ़ता था। मुझे उस समय आत्मज्ञान की इच्छा हुई, इसलिए कालेज का जीवन फीका मालूम पड़ने लगा। आखिर कालेज छोड़ने और घर त्यागने का निश्चय किया। गृह-त्याग कर मैं सोचता था कि हिमालय चला जाऊँ। लेकिन कुछ दिन काशी में रहकर बाद में वहाँ जाऊँगा, यह तय किया। जब मैं काशी गया तो वहाँ बापू के एक व्याख्यान की चर्चा चल पड़ी थी। वहाँकी हिन्दू युनिवर्सिटी में गांधीजी का यह व्याख्यान हुआ था। उस व्याख्यान में उन्होंने अहिंसा के बारे में बहुत-सी बातें बतायीं। मुख्य बात यह थी कि निर्भयता के बिना अहिंसा चल ही नहीं सकती। मन-ही-मन हिंसा का भाव रखने की अपेक्षा खुलकर हिंसा की जाय तो भी वह कम ही हिंसा मानी जायगी। याने मानसिक हिंसा ही मुख्य हिंसा है और वह बिना निर्भयता के आ नहीं सकती। उस भाषण में उन्होंने उन राजा-महाराजाओं की भी कसकर आलोचना की, जो तरह-तरह के आभूषणों से सजे हुए आये थे। वह व्याख्यान बहुत ही प्रसिद्ध व्याख्यान हुआ। इसीलिए उसकी वहाँ विशेष चर्चा रही। मैं वहाँ पहुँचा तो उस ऐतिहासिक व्याख्यान को एक महीना हो चुका था, फिर भी नगर में उसकी शोहरत रही। जब मैंने वह व्याख्यान पढ़ा तो कितनी ही शंकाएँ और जिज्ञासाएँ उठ खड़ी हुईं। इसलिए मैंने बापू के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें अपनी जिज्ञासाएँ उनके समक्ष प्रस्तुत की थीं। उन्होंने उस पत्र का मुझे बहुत ही अच्छा जवाब दिया।

आप सबको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैंने अपना सारा पत्र-व्यवहार अग्नि-नारायण को अर्पण कर दिया। बचपन में भी मैं इसी तरह अच्छी-से-अच्छी कविता बनाकर उसे अग्नि नारायण को सौंप देता था। मेरी यह विध्वंसक वृत्ति बचपन से चली आ रही है और आज भी कायम ही है। इसीलिए मेरे पास आज एक भी पत्र नहीं है। हाँ तो बापू ने पहले पत्र में कुछ विस्तार के साथ मेरी शंकाओं का उत्तर दिया था। उसके जवाब में १०-१५ दिनों बाद मैंने पुनः उनसे कुछ शंकाएँ पूछीं। तब उनका एक कार्ड आया कि आपने अहिंसा के बारे में जो जिज्ञासाएँ की हैं, उनका समाधान पत्र-व्यवहार द्वारा नहीं हो सकता। उसके लिए जीवन से ही स्पर्श होना चाहिए। इसलिए कुछ दिन के लिए मेरे पास आश्रम में आइये और रहिये तो धीरे-धीरे बातचीत हो सकती है। उनका यह जवाब कि 'समाधान बातों से नहीं, जीवन से होगा', मुझे जँच गया। मुझे जाना था हिमालय की ओर। हिमालय काशी से उत्तर की ओर था, जब कि यह आश्रम अहमदाबाद के नजदीक कोचरब में। अब हिमालय जाने के बदले बापू के पास जाने की ही इच्छा जाग उठी।

फिर, उस जवाब के साथ बापू ने आश्रम का एक नियम-पत्रक भी भेजा था, जो मेरे लिए और भी आकर्षक हुआ। उस समय तक किसी भी संस्था का वैसा पत्रक मेरे पढ़ने में नहीं आया था। उसमें लिखा था कि 'इस आश्रम का ध्येय विश्वहित-अविरोधी देश-सेवा है और उसके लिए हम निम्न-लिखित व्रत आवश्यक मानते हैं।' नीचे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, शरीरश्रम आदि एकादश व्रतों के नाम लिखे थे। मुझे यह बहुत ही अजीब मालूम पड़ा। कौन ऐसा देश होगा, जहाँ देश के उद्धार के लिए सत्य और अहिंसा से नाता जोड़ा गया हो? मैंने बहुत-से इतिहास पढ़े, पर कहीं भी यह देखने को नहीं मिला कि देश के उद्धार के लिए व्रतों का विधान आवश्यक माना गया हो। इसीलिए यह मुझे आश्चर्यजनक लगा। ये सारी बातें योगशास्त्र में, धर्मग्रन्थों में, भक्तिमार्ग में आती हैं, लेकिन देश-सेवा के लिए भी इनकी आवश्यकता पड़ती है, यह बात उस पत्रक में लिखी थी, जिसे मैं जानता नहीं था। इसीलिए मेरा मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया और ऐसा लगा कि आखिर देख तो लिया जाय कि क्या बात है? किस तरह देश-सेवा के साथ व्रतों का नाता जोड़ा जाता है? इसी जिज्ञासु-वृत्ति से सत्य की खोज में मैं यहाँ आया।

इस तरह मैं जानेवाला तो था हिमालय, पर पहुँच गया अहमदाबाद! वह दिन ७ जून १९१६ का था। भोर में मैं अहमदाबाद स्टेशन पर उतरा। मेरे पास जो कुछ भी सामान था, उसे खुद ही उठा लिया। बहुत सामान था भी नहीं। इसीलिए रास्ता पूछता-पूछता पैदल ही चल पड़ा। इसी एलिस ब्रिज पर से जाने के लिए लोगों ने रास्ता बताया। उसी रास्ते से चलकर ८ बजे मैं आश्रम पहुँचा। बापू को खबर पहुँचायी गयी कि 'एक नये भाई आये हैं।' उन्होंने कहा—'ठीक है, नहा-धोकर मुझसे मिलने आयें।' नहा-धोकर मैं उनके पास पहुँचा तो वे शाक बना रहे थे, काम कर रहे थे। मेरे लिए यह भी एक नया ही दृश्य रहा। शाक बनाने का काम भी राष्ट्र-नेता करते हों, ऐसा मैंने कहीं पढ़ा नहीं था। राष्ट्र के नेता तो लिखते हैं, धर्मग्रन्थ पढ़ते या व्याख्यान दिया करते हैं। बापू ने मुझे अपने पास बैठा लिया और मेरे हाथ में चाकू दिया। वहाँ जो दो-चार भाई बैठे थे, उनके भी हाथ में चाकू थे, इसलिए एक चाकू मुझे भी दिया गया। मैंने पहले कभी भी चाकू का उपयोग नहीं किया था। आप लोगों को यह मजाक मालूम पड़ेगा, मेरी पेन्सिल

भी ऐसी अजीब थी कि जल्दी घिसती ही न थी, जिसे मैंने सात-आठ सौ पृष्ठों की नोट-बुक में बाँध रखा था। एक ही पेन्सिल में मेरा चार वर्ष का शिक्षण हुआ। घिस-घिस कर वह बिलकुल छोटी हो गयी थी। इस तरह पेन्सिल छीलने के लिए तो चाकू का उपयोग करना जानता था, पर उससे शाक बनाना नहीं जानता था। हाँ, शाक खाना अवश्य जानता था। तो शाक बनाने का काम राष्ट्रनेता करे, यह विचित्र मालूम पड़ा। फिर वह काम पुरुष करे, यह और भी विचित्र लगा। कारण यह काम तो आम तौर पर स्त्रियों का माना जाता है। मैं वहाँ बैठ गया और काम करते-करते ही सारी बातें हुईं। यही मेरी प्रथम दीक्षा थी, जो मुझे वहाँ मिली।

उत्तरोत्तर अधिक आकर्षण

उस दिन से मैं अपनी जिज्ञासा आश्रम में देखने लगा। मैंने प्रायः महीनों मौन ही रखा। किसीको भी पता न था कि मैं कुछ जान सकता हूँ या पढ़ सकता हूँ। लगभग दिनभर मैं मौन रह कर ही काम करता था। कुछ भाइयों से बातचीत भी होती थी, पर अधिक नहीं। मैं अपने काम में ही मग्न रहता, जब कि काम करने का मुझे कोई खास शौक नहीं था। फिर भी एक पारमार्थिक दीक्षा के तौर पर मैं यह कर रहा था। बापू जब भी बातें करते तो उनमें सत्यनिष्ठा, अहिंसा-शक्ति, ब्रह्मचर्य आदि विषयों पर काफी विवेचन हुआ करता था। उसके साथ-साथ शाक बनाने की बातें भी चला करती थीं। 'कौन सा शाक ले आये और वह किस भाव से मिला' आदि रसोई, व्यवहार, राज्य, नीति, देशहित और परमार्थ—सभी बातों की खिचड़ी रहा करती थी। सब विचार मिलाकर देखे जायँ तो परस्पर विरोधी भी दीखते थे। लेकिन शरीर में नख से शिखा तक विभिन्न विरुद्ध अवयव होते हुए भी जैसे वे शरीर ही हैं, वैसे ही ये सभी विचार भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक ही जीवन के अंग थे। पारमार्थिक जीवन का जो मूल्य है, वही साधारण कामों का भी मूल्य है। इसी तरह सारा काम चलता रहा।

फिर तो मेरा यह आकर्षण दिन-पर-दिन बढ़ता ही गया। उसके बाद मेरी मूल कल्पना कुछ संस्कृत पढ़ने की थी। इसलिए एक वर्ष की छुट्टी लेकर मैं आश्रम छोड़कर चला गया। लेकिन काम पूरा न होने से दो महीने और छुट्टी माँगी और जिस क्षण आश्रम छोड़ा, उस दिन से ठीक १ वर्ष २ मास पूरे कर पुनः आश्रम में आ पहुँचा। बापू तो यह भूल ही गये थे, पर मैं समय पर आ पहुँचा, इसकी उनपर गहरी छाप पड़ी। वे समझ गये कि यह आदमी जो वचन देता है, उसका पूरी तरह पालन करता है, इसलिए इसमें कुछ तो सत्यनिष्ठा है ही। इसीलिए उन्होंने बड़े प्रेम से मेरे दोष सहन किये। आखिर वे दोष मुझे छोड़ निराश होकर भाग गये। जिस तरह गरीबों को उसके सगे-संबंधी छोड़ जाते हैं, उसी तरह मुझसे काफी प्यार करनेवाले मेरे दोष भी मुझे छोड़कर चले गये। यह सन् १९१६ की बात हुई। उसके बाद मैं चार बरस तक इस साबरमती-आश्रम में रहा। वहाँसे कई बार इस अहमदाबाद में आया-जाया करता था। इस नगरी के साथ मेरा यही परिचय है।

यह आत्म-शक्ति का भान कराने का कार्य

मुझे यहाँ आत्म-विद्या की शिक्षा प्राप्त हुई। पुस्तकी विद्या नहीं, उसे पाने के लिए तो मैं खुद समर्थ था। लेकिन यहाँ तो प्रत्यक्ष अनुभव की शिक्षा प्राप्त हुई। इस कारण इस नगरी के मुझपर अत्यन्त उपकार हैं। मैं कहना चाहता हूँ कि जिस शब्द का उच्चारण कर मैं घर से निकल पड़ा था, याने 'अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा' उसीकी खोज के लिए मेरी यह पदयात्रा चल रही है, यहीं मैं अनुभव करता हूँ। इसलिए जब आप सबको देखता हूँ तो लगता है कि ब्रह्म के इतने सारे रूप मेरे सामने खड़े हैं और मुझसे पूछ रहे हैं कि 'अभी भी तुझे ब्रह्म का दर्शन हो रहा है या नहीं? क्या इन सबको छोड़ ब्रह्म कहीं छिपा है और तू अब भी उसे खोजने जायगा?' वर्धा-आश्रम में रहते हुए अध्ययन-अध्यापन, चिन्तन-मनन आदि भंगी काम से लेकर रसोई तक के काम और विचारों की सुश्रूषा एवं खादी-काम आदि जो भी विचार सूझ पड़े, उनपर मैं अपनी शक्ति भर अमल करता रहा। किन्तु उन सबमें भरी एक ही दृष्टि थी और वह थी आत्म-दर्शन की। मुझे यह कहते हुए आनन्द होता है कि मेरा समाधान होने भर का आत्म-दर्शन मुझे हो गया है। मैं मानता हूँ कि परिपूर्ण दर्शन तो सदैव दूर ही रहता है और ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों वह दूर भागता जाता है। उसके और हमारे बीच सदैव खेल (आँख-मिचौनी) चलता रहता है और उस खेल में ही मजा है। आत्म-दर्शन का स्पर्श होने पर तो यह खेल ही ही खत्म हो जाता है। फिर तो आनन्द ही रफू हो जाता है। इसलिए आत्म-दर्शन और हमारे बीच थोड़ा अंतर रहना ही अच्छा है। यह सच है कि मानव-जीवन में आत्म-दर्शन की प्रेरणा रहती है, लेकिन समाधान भर का आत्म-दर्शन हो जाय तो मानव निश्चिंत, निर्भय और निःशंक हो जाता है। यही अनुभव में आता है। घर और कालेज छोड़ने में मेरी यही मुख्य प्रेरणा थी। आज मैं आपके पास आ पहुँचा हूँ। मैं जो घूम रहा हूँ, उसका लक्ष्य यही है कि लोगों को भी आत्म-शक्ति का भान हो। आज मैं यही काम कर रहा हूँ

छोटे-छोटे विचारों में न उलझें

आप सभी एक महानगरी के नागरिक हैं। दुनिया के समाचार सदैव आपके कानों तक पहुँचते रहते हैं। आज दुनिया बहुत ही छोटी हो गयी है। किसी जमाने में वह काफी बड़ी थी। तब किसीको पता ही नहीं था कि दुनिया में इतने सारे देश हैं। अकबर को भी पता नहीं चला कि 'इंग्लैण्ड' नाम का कोई देश है। इसका पता तो उसे तब चला, जब कि इंग्लैण्ड के लोग यहाँ आ पहुँचे और उसके पास जाकर उन्होंने अपने हकों की माँग की। लेकिन आज तो स्कूलों के बच्चे तक जानते हैं कि दुनिया में कितने देश हैं और कहाँ क्या हो रहा है। दुनिया के किसी कोने में मामूली-सी भी घटना घट जाय तो उसपर सर्वत्र चर्चा चल पड़ती है। इस तरह विज्ञान-युग में ज्ञान का विस्तार हो गया और विश्व संकुचित बन गया है। ज्यों-ज्यों ज्ञान का विस्तार होगा—ज्ञान अनंत तक पहुँच जायगा—त्यों-त्यों विश्व शून्य की ओर पहुँचेगा, बिलकुल छोटा बन जायगा। आपने अखबार में पढ़ा ही होगा कि मानव ग्रहों पर पहुँचने का प्रयत्न कर रहा है। चन्द्र, मंगल तक पहुँचने की कोशिश की जा रही है। चार सौ वर्ष पूर्व कोलंबस भारत की खोज के लिए निकला था। उन दिनों यूरोपीय देशों में भारत के प्रति अत्यधिक आकर्षण पाया जाता था—'यह सभी का भरण-पोषण करता है, बड़ा ही समृद्ध देश है, यहाँ अच्छे-अच्छे कारीगर उत्तम से उत्तम वस्तुएँ बनाते हैं और यह इंग्लैण्ड के व्यापार के काम आता है।' ठीक इसी तरह आज भी लोग मंगल और चन्द्र की खोज में निकल पड़े हैं तथा वहाँ पहुँचने के लिए नये-नये साधन प्रस्तुत कर रहे हैं। आप लोगों ने सुना ही होगा कि आज एक कुत्ता भी ८०० मील ऊपर पहुँच गया। सोचने की बात है कि जिस जमाने में कुत्ता भी इतनी उन्नति कर सकता है, क्या उस जमाने में मानव का मन अवनत

रह सकता है और क्या वैसा चल भी सकता है ? इसलिए यह निश्चित समझ लें कि अब ऐसा जमाना आ रहा है, जब कि सेवा को विशाल रूप और विचार को विश्वरूप देना पड़ेगा। संकुचित और छोटा विचार करेंगे तो निश्चय ही हार और मार खायेंगे। नागरिक छोटे-छोटे विचारों में उलझेंगे तो मतभेद ही बढ़ायेंगे, जिनसे क्लेश ही बढ़ेंगे। यह पुराने जमाने की बात हो गयी, नये जमाने की नहीं।

सह-अस्तित्व और पंचशील

आज तो संयुक्त कर्नाटक जैसी चीजें बनती हैं। मैंने कर्नाटक में प्रवेश किया तो बच्चे संयुक्त कर्नाटक का नारा लगा रहे थे। मैंने उनसे कहा कि 'संयुक्त कर्नाटक' या 'संयुक्त विश्व' चाहते हैं ? यदि यह संयुक्त कर्नाटक संयुक्त विश्व का पहला कदम हो तो उसका गौरव ही करना होगा। लेकिन यदि संयुक्त कर्नाटक 'विभक्त विश्व, विभक्त भारत' बनाने के लिए हो तो उसमें कुछ भी गौरव नहीं। उसमें हीनता ही मानी जायगी। इसपर बच्चों ने कहा : 'संयुक्त कर्नाटक संयुक्त विश्व के लिए ही चाहिए।' यह सुनकर मुझे बड़ा ही सन्तोष हुआ और फिर मैंने उनके द्वारा 'जय जगत' के नारे लगवाये। इस तरह जब कर्नाटक में 'जय जगत' का उद्घोष हुआ तो आप लोग अपने बच्चों को संकुचित नहीं रख सकते। कारण भारत का यही इतिहास रहा है कि 'किसी-न-किसी जमाने में दुनिया के सभी देशों से, बड़ी-बड़ी जमातें यहाँ आयीं और उन सबका यहाँ समान रूप में संग्रह कर लिया गया। आज दुनिया में 'पंचशील' और 'सह-अस्तित्व' के जो नारे लगाये जा रहे हैं, वे तो इस भारत भूमि के पुराने उद्घोष (नारे) हैं। यहाँसे प्राचीन काल में यही सन्देश सुनाया गया कि दुनिया में अविरोधी जीवन बिताया जाय और कोई भी किसीके जीवन पर हमला न करे। प्रेम से एक-दूसरे से उनकी बातें सीखी जायँ और उन्हें अपनी बातें सिखायी जायँ।' इसीका नाम सह-जीवन है।

फिर 'पंचशील' भी कोई नया नहीं है। बौद्ध और योग-शास्त्र में जो बातें आयी हैं, वही पंचशील है। याने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये ही पंचशील हैं, जिसे 'पंचचर्या' नाम दिया गया है। बौद्धों ने इसे 'पंचशील' नाम से ग्रहण किया तो पतंजलि ने 'महाव्रतों' में। वेद में भी इसका उल्लेख पाया जाया है। 'पंचयाग' या 'पंच महायज्ञ' इसी बात का प्रतीत है। प्राचीन काल में ऋषियों ने ज्ञानदृष्टि से देखकर यह बात लोगों के सामने रखी। परिणामस्वरूप भारत जैसे विशाल देश में अनेक जातियाँ, पंथ, भाषाएँ समाविष्ट हैं। यह बात दूसरे किसी देश में नहीं पायी जाती। चीन इतना बड़ा देश है, पर वहाँ भाषा एक ही चलती है, जिसे 'चीनी भाषा' कहते हैं। भले ही बोलचाल की भाषाएँ भिन्न-भिन्न हों, पर वाङ्मय की, साहित्य की भाषा तो वहाँ एक ही है। वहाँ अनेक भाषाएँ विकसित नहीं हो पायीं। यूरोप में तो भाषाओं के आधार पर एक-एक स्वतंत्र राष्ट्र ही बन गये हैं, जो वास्तव में राष्ट्र नहीं, प्रान्त ही कहने लायक हैं।

इस दृष्टि से देखें तो यूरोप विचार के क्षेत्र में हिन्दुस्तान से बहुत ही पिछड़ा है। हमें उससे विज्ञान के क्षेत्र में बहुत कुछ लेना है, यह सही है। उसके बिना सर्वोदय हो नहीं सकता, लेकिन यूरोप का समाज-शास्त्र हमसे बहुत पिछड़ा हुआ है। जहाँ यूरोप में अनेक भाषाएँ हैं, वहाँ भारत में भी वे हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में विकसित भाषावाले अनेक प्रदेश होने पर भी कश्मीर से कन्याकुमारी तक यह एक अखण्ड देश है, ऐसा यहाँवाले मानते हैं। काशी का व्यक्ति रामेश्वर तक अपना सम्बन्ध जोड़ता रहा है। इस तरह हमारे ऋषियों ने हमारी संस्कृति को बहुत ही व्यापक बना दिया। इस तरह स्पष्ट है कि भारत ऐसा देश है, जहाँ अनेक जमातें एकत्र रह सकती हैं। हमारे देश के लिए यह बहुत बड़े गौरव की बात है।

प्रेम, शान्ति और करुणा ही मुख्य शक्ति

फिर ऐसे विशाल और संग्राहक राष्ट्र को जो स्वराज्य प्राप्त हुआ, वह भी एक अद्भुत ढंग था। अहिंसा से, किसी तरह का क्षोभ किये बिना हमने स्वराज्य पाया। आज तक किसी देश को इस तरह स्वराज्य नहीं मिला। इसीलिए हमारी जिम्मेदारी भी अधिक बढ़ गयी है। आज दुनिया हमसे बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाये हुए है। वह जानती है कि इस देश का प्राचीन इतिहास बड़ा ही उज्ज्वल रहा है। इसने अनेक जमातों को अपने यहाँ उदार प्रश्रय दिया है। सम्पन्नता के जमाने में भी यहाँके राजाओं ने किसी देश पर चढ़ाई नहीं की। यह तो इस देश का पुराना इतिहास है। उसके बाद आज का नया इतिहास यह है कि बापू के कहे अहिंसा के मार्ग पर चलकर ही इस देश ने आजादी पायी। हम जानते हैं कि बापू के यहाँ आने पर देश की क्या स्थिति थी और उन्हें देश को अहिंसा के मार्ग पर चलकर स्वराज्य पाने के लिए किन-किन मुसीबतों का सामना करना पड़ा। लेकिन अन्ततः जनता अहिंसा पर आरूढ़ हो गयी और उसीके बल पर उसने स्वराज्य पाया। ये दोनों नये और पुराने इतिहास देख दुनिया को यह आशा हो गयी है कि भारत आज की स्थिति में हमें शान्ति की राह दिखा सकता है। यही कारण है कि इन सात-आठ वर्षों में दुनिया के पचासों राष्ट्रों से कितने ही लोग मेरे पास आ चुके हैं। वे भूदान, ग्रामदान-आन्दोलन की उत्सुकतापूर्वक जानकारी पाना चाहते हैं। दुनिया के बहुत-से लोगों ने मुझे पत्र भी लिखे हैं कि उनकी अपने यहाँ-की समस्याओं के हल के लिए मैं उपाय बताऊँ। मैं उन्हें क्या जवाब दूँ ? सोचता हूँ कि जब तक हिन्दुस्तान में, जैसा मैं चाहता हूँ, वैसा न कर पाऊँ, तब तक दुनिया की समस्या के लिए क्या कर पाऊँगा ? फिर भी कहा जा सकता है कि हम प्रेम, शान्ति और करुणा की शक्ति को ही मुख्य शक्ति मानते हैं। यह शक्ति सर्वश्रेष्ठ शक्ति है, यही समझकर चलते हैं। यही बोध हमारे पास है, उसे आप लोग भी ग्रहण करें। इसके सिवा हम आप लोगों को कुछ देने लायक कर नहीं पाये, यह कहना पड़ता है।

मैं इन भाइयों में कितनी अधिक उत्सुकता देख रहा हूँ। आखिर इतनी विराट सभा यहाँ क्यों आ जुटी है ? लोग यहाँ क्या समझने के लिए आये हैं ? वे जानते हैं कि भूदान, ग्रामदान से स्वतंत्र लोक-शक्ति निर्माण होती है। आज सर्वत्र दुनिया में सरकार-शक्ति और हिंसा-शक्ति चल रही है और हमारे देश में भी वह कम-बेशी है ही। किन्तु इन दोनों से भिन्न जनता की स्वतंत्र शक्ति इस आन्दोलन से निर्माण हो रही है। इसीलिए हर तबके के लोगों की ओर से इसका स्वागत किया जाता है। इस आन्दोलन से वे प्रेम करते हैं। यह देख मुझे अत्यन्त आनन्द होता है। सचमुच दुनिया हमसे बड़ी-बड़ी आशा लगाये है, किन्तु पण्डित नेहरू कह रहे थे कि विदेशों में जब भारत के विषय में इतनी बड़ी-बड़ी आशाएँ देखते हैं और अपने यहाँ तरह-तरह की कमजोरियों को पाते हैं तो शरम आने लगती है। पण्डितजी जैसे जिम्मेदार लोग जब यह कहते हैं तो उसपर संदेह करने की कोई बात नहीं रह जाती। हमें इसपर विचार करना चाहिए और दूसरे देशों की ये बातें सुनकर सचमुच उसके अनुरूप बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

ध्यान रखिये कि सारी दुनिया को बचानेवाली शक्ति का उदय इसी साबरमती के किनारे पर हुआ है। इसी अहमदाबाद शहर में अहिंसा के सूर्य का उदय हुआ था। गुजरात का यह नव-स्मरण विशिष्ट स्मरण माना जायगा। बापू जब यहाँ आये और गुजराती में बोलने लगे तो यहाँ के साहित्यिक कहने लगे कि बापू को साहित्य का पता ही क्या? सचमुच साहित्य में तो नव रस हुआ करते हैं, लेकिन बापू तो शान्त रस ही चाहते थे। प्रसंगवश शृंगार, वीर आदि कदाचित् आ जाय तो अलग बात है। लेकिन शान्त रस से ही सभी रस पैदा हो सकते हैं, यह उन्होंने बता दिया। बापू का मुख्य रस शान्त रस ही था। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से मुकाबला करने में सदा इसी रस का सहारा लिया, उनका अपना सारा साहित्य, जो प्रायः गुजराती में ही अधिक है, इस तरह शान्तिरस से ओतप्रोत है। इस तरह उन्होंने सर्वत्र शान्ति-शक्ति ही प्रकट की। मैं आशा रखता हूँ कि उनका अहमदाबाद भी वही शान्ति-शक्ति प्रकट करेगा।

विज्ञान-युग में यह बात ध्यान रखने की है। विज्ञान तथा हिंसा दोनों मिलेंगे तो सर्वनाश हो जायगा। विज्ञान तथा अहिंसा दोनों मिलेंगे तो सर्वोदय होगा। सर्वोदय के लिए अहिंसा और सर्वोदय दोनों साथ-साथ चलने चाहिए। यदि विज्ञान पर किसीका अधिकार है तो वह सर्वोदयवालों का ही है, राष्ट्रवादी, कौमवादी आदि किसी भी संकुचित वादी के हाथ विज्ञान पहुँचेगा तो वह उसे पचा नहीं सकता। अहिंसा और सर्वोदय में ही उसे पचाने की शक्ति है। आज का विज्ञान-युग यदि किसीके लिए सर्वाधिक अनुकूल हो सकता है तो वह साबरमती के लिए ही, ऐसा मैं कह सकता हूँ। विज्ञान-युग में साबरमती दुनिया का मध्यबिन्दु बनेगी। जब सभी देश स्वतंत्र होंगे—आज सभी स्वतंत्र नहीं हैं—तो दुनिया के नक्शे में यह अहमदाबाद मध्यबिंदु के रूप में रहेगा। लेकिन यह बात सिर्फ तालियाँ बजाने से नहीं होगी। गांधीजी की इस प्रतिष्ठा को सँभाल रखेंगे, तभी यह हो सकेगा। नहीं तो तालियाँ बजाते हैं तो दोनों हाथों को अलग-अलग ही कर देते हैं। आज दक्षिणपंथी 'शान्ति-शान्ति' कहते हैं तो वामपंथी 'क्रान्ति-क्रान्ति'। दोनों कभी एक नहीं हो पाते। लेकिन सर्वोदय में दोनों का समावेश हो जाता है। सर्वोदय में शान्तिमय क्रान्ति की बात है। उसमें दक्षिण और वाम दोनों एकत्र हो जाते हैं। यह सारी कीमिया बापू के विचारों में थी। मैं बापू के विचारों का ही सेवक बनकर गत ३०-४० वर्षों से काम कर रहा हूँ और परिव्राजक बनकर आपके दरवाजे आ पहुँचा हूँ। अब देखना है, आप क्या करते हैं?

मेरा काम आप लोगों का भी काम है, यह समझकर आप एक बात अवश्य कीजिये। देखिये, सूर्यनारायण अस्त हो रहे हैं, इसलिए आप सब लोग शान्त हो जायँ और मेरी यह बात ध्यान रखें कि अहमदाबाद के घर-घर में सर्वोदय-पात्र की स्थापना कर दें। यह सर्वोदय-पात्र मजदूरों या गरीबों को खिलाने के लिए नहीं है, बल्कि यह गरीबी मिटाने के लिए ही है। गरीबी कायम रखकर गरीबों को खिलाने की बात आज की नहीं, पुराने जमाने की हो गयी है। गरीब कुत्तों की तरह आश्रित बनकर आयें और हम उनके सामने रोटी का टुकड़ा डालकर उन्हें कुछ समय के लिए शान्त कर दें, यह ठीक नहीं। इससे उनकी भूख सदा के लिए मिट नहीं सकती। सर्वोदय-पात्र गरीबों की गरीबी मिटायेगा और अमीरों की अमीरी भी। यही सर्वोदय-पात्र का अर्थ है। इसे आप लोग समझें और इस संकल्प के साथ कि हम गरीबों की गरीबी और अमीरों की अमीरी मिटा दें, सर्वोदय-पात्र में रोज एक-एक मुट्ठी अन्न डाला करें। इस तरह अपने-अपने दोष मिटाने के लिए आप लोग घर-घर सर्वोदय-पात्र रखें।

आप लोग यह भलीभाँति समझ लें कि गरीबी पाप है और अमीरी भी पाप है। कई लोग यह मानते हैं कि गरीबी तो पाप है, पर अमीरी पुण्य है। एक जमाने में हमारे यहाँ किसी करोड़पति के घर लड़का पैदा होता था तो लोग कहते थे कि 'उसके पूर्वपुण्य का उदय हुआ।' लेकिन सोचने की बात है कि बच्चा गरीब के घर जन्म लेता है तो नंगा ही जनमता है और अमीर के यहाँ भी नंगा ही। अमीर के घर वह कपड़े पहनकर जन्म नहीं लेता। इसलिए लोगों का यह कहना कि 'पूर्वजन्म के पाप से गरीब के घर और पूर्व-पुण्य के प्रभाव से अमीरों के घर जन्म प्राप्त होता है', सर्वथा गलत है। गीता के शांकरभाष्य में भगवान शंकराचार्य ने लिखा है कि 'पुण्यवान् लोगों में से कितने तो पवित्र श्रीमान लोगों के घरों में जन्म लेते हैं, यह जन्म बहुत ही दुर्लभ होता है। लेकिन दुर्लभतर जन्म तो वही माना जायगा, जब कि कोई ज्ञानी, योगियों के घर जन्म लेता है।' इसका अर्थ गरीबों के घर, यह समझ लेने बात है। गौतम बुद्ध ने श्रीमान के कुल में जन्म लिया, जब कि शंकराचार्य ने वैसे ही पवित्र कुल में, पर गरीब के घर। इसलिए यह समझ लेना चाहिए कि पूर्वजन्म के पाप या पुण्य से गरीबी और अमीरी से कोई सम्बन्ध नहीं। मैं तो यही मानता हूँ कि इसी जन्म के पाप से आदमी गरीब होता है और इसी जन्म के किसी पाप से अमीर बनता है। इसीलिए हमें गरीबी और अमीरी दोनों पापों को मिटा देना चाहिए।

इसलिए एकदम कल ही हर घर में सर्वोदय-पात्र की स्थापना हो जानी चाहिए। सूर्य आपके सामने खड़ा है, इसलिए आप सभी अभी संकल्प कीजिये कि हम लोग कल से ही अपने घर में सर्वोदय-पात्र रखेंगे। रविशंकर महाराज सोच रहे हैं कि वे अहमदाबाद शहर में गली-गली घूमकर लोगों के पास पहुँचेंगे और उन्हें सर्वोदय-पात्र की बात समझायेंगे। लेकिन आप सब ऐसा संकल्प करें कि रविशंकर महाराज आयें तो उन्हें यही दीखे कि सभी घरों में सर्वोदय-पात्रों की स्थापना हो गयी है। इस तरह अहमदाबाद के प्रत्येक घर में सर्वोदय-पात्र रख दिये जायँ तो महाराज और बहुत-सी सेवा कर सकेंगे। सारे गुजरात और पूरे राष्ट्र की उन्होंने सेवा की है। यह बात आप ध्यान में रखें तो मेरी कथा यहीं समाप्त हो जाती है। ●●●

अनुक्रम

१. दुनिया की तीन तारक शक्तियाँ
सर्वोदयनगर (अजमेर) २८ फरवरी '५९ पृ० २०९
२. लोभ का ग्रामीकरण कीजिये...
महेसाणा २६ दिसम्बर '५८ „ २११
३. लोक-शक्ति जागृत करने...
कावा (साबरकाँठा) ७ जनवरी '५८ „ २१२
४. सर्वोदय ही विज्ञान को पचा सकता है
अहमदाबाद २० दिसम्बर '५८ „ २१३

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित
फोन : १२८५ तार—प्रकाशन, राजघाट, काशी।